International Journal of Sociology and Political Science
www.sociologyjournal.in
Online ISSN: 2664-7745, Print ISSN: 2664-7737
Received: 06-06-2021; Accepted: 22-06-2021; Published: 07-07-2021
Volume 3, Issue 2, 2021, Page No. 01-05

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद

विवेक कुमार सिंह
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश
दीनदयाल द्वारा स्थापित एकात्म मानववाद की अवधारणा पर आधारित राजनीतिक दर्शन भारतीय जनसंघ (वर्तमान भारतीय जनता पार्टी) एक उपहार है। उनके अनुसार, एकात्म मानववाद प्रत्येक मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का एक एकीकृत कार्यक्रम होता है। उन्होंने कहा कि भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में पश्चिमी अवधारणाओं जैसे व्यक्तिवाद, जनतंत्र, समाजवाद, साम्यवाद और पूंजीवाद पर निर्भर नहीं हो सकता। उनका विचार था कि भारतीय बुद्धि पश्चिमी सिद्धांतों से प्रभावित थी और विचारधाराओं से घुटन महसूस होती है। परिणामस्वरूप मौलिक भारतीय विचारधारा का विकास और विस्तार में बहुत बाधा है। एकात्म मानववाद, भारत के रूप में पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने तत्कालीन राजनीति और समाज को उस दिशा में मुड़ने की सलाह दी है जो सौ प्रतिशत भारतीय है।

मूल शब्दः राजनीतिक दर्शन, व्यक्तिवाद, जनतंत्र, समाजवाद, साम्यवाद, पूंजीवाद, एकात्म मानववाद

प्रस्तावना
पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद मानव जीवन के संपूर्ण स्तर के संबंध का दर्शन है। यह एक विचारधारा है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने देश और दुनिया के सामने इस विचारधारा को प्रस्तुत किया, जब हमारा देश आजाद हुआ तब इस बात पर विवाद चल रहा था, कि भारत पूंजीवाद को अपनाए या समाजवाद के रास्ते को, दोनों ही रास्तों को खोजने वाले विदेशी थे।1
उनके देश की परिस्थिति में यह विचार विकसित हुए थे। तब पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने कहा हमारी ऐसी कौन सी मजबूरी है कि हम विदेशी विचारधारा को ही चुनें और जिन विचारधाराओं की बहस में एक भी भारतीय ना हो और ना ही हम उन परिस्थितियों में विकसित हुए हैं। उन्होंने हस्तक्षेप करते हुए भारतीय प्रजा को झकझोरा तथा आह्वाहन किया कि हम अपने पुरातन जीवन के मूल्यों से युक्त रास्ते पर चलें जाए तथा पूंजीवाद और साम्यवाद के स्थान पर एकात्मवाद को सामने रखा। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने कबीरदास के सार को सुना रहे, 'सार–सार को गहि रहै, थोथा देई उड़ाय' की तरह पाश्चात्य दुर्गुणों को छोड़ सद्गुणों को आधार बनाया। हमारा आधार एकात्मकता है, कि हमारे यहां भी छुआछूत जातिवाद आदि अनेक दुर्गुण उत्पन्न हुए पर 'जाति पाति पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई" कहकर इस विभेद को पाटने का प्रयास किया है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद
भारतीय संस्कृति एकात्मवादी है जो कि जीवन के विभिन्न अंगों के दृश्य भेद स्वीकारते हुए उनके स्तर में एकता की खोज की और उनमें समन्वय की स्थापना करती है। परस्पर विरोध और संघर्ष के स्थान पर वह पूरकता, अनुकूलता और सहयोग के आधार पर चलती है। एकात्म मानव विचार भारतीय और बाह्य सभी चिंतन की धाराओं का सम्यक आकलन करके चलता है। उसकी शक्ति और दुर्बलताओं को परखता है और एक ऐसा मार्ग प्रशस्त करता है जो मानव को उसके अब तक के चिंतन अनुभव और उपलब्धि की मंजिल की ओर बढ़ा सके।

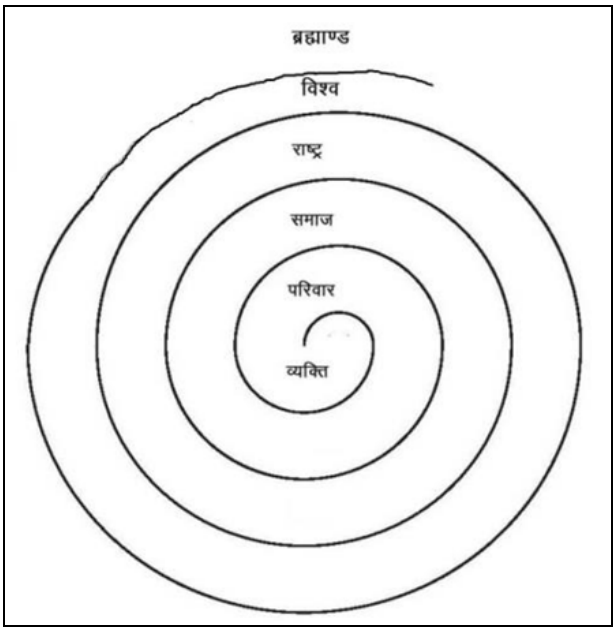

चित्र 1

एकात्मवाद एक ऐसी धारणा है जो सर्पिलाकार मंडल आकृति द्वारा स्पष्ट की जा सकती है। जिसके केंद्र में व्यक्ति, व्यक्ति से जुड़ा घेरा घर–परिवार, परिवार से जुड़ा घेरा समाज जाति, फिर राष्ट्र और विश्व और फिर अनंत ब्रह्मांड को अपने में समाए हुए हैं। एक से जुड़कर दूसरे का विकास किया जाता है। हमारी संपूर्ण व्यवस्था का केंद्र मानव का होना चाहिए। जो कि "यत् पिंडे तत् ब्रह्मांडे" के न्याय अनुसार समष्टि का जीवंत प्रतिनिधि एवं उसका उपकरण है। भौतिक उपकरण और मानव के सुख का साधन भी है साध्य नहीं। जिस व्यवस्था में पुरुषार्थ चतुष्टयशील संपूर्ण मानव के स्थान पर एकांगी मानव का कोई विचार किया जाएगा, अधूरी है। हमारा आधार एकात्म मानव है जो अनेक एकादश समष्टि का एक साथ

प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है। एकात्म मानववाद के आधार पर हमें जीवन के सभी व्यवस्थाओं का विकास करना होगा।[2]

मानववाद से कई विचारधाराएं प्रचलित हो रही हैं, लेकिन उनका विचार भारतीय संस्कृति के चिंतन से अनुप्राणित ना होने के कारण मूलतः भौतिकवादी है। मानव के नैतिक स्वरूप और व्यवहार के लिए उन्होंने कोई तात्विक विवेचन प्रस्तुत नहीं किया। आध्यात्मिकता को अमान्य कर मानव तथा जगत के बीच व्यवहारिक संगति नहीं बैठाई जा सकती। भारतीय परंपरा मानव को एकात्म मानती है।

एकात्म यानी जिसको बांटा नहीं जा सकता है। अर्थात ना बांटी जा सकने वाली इकाई को एकात्म कहते हैं। समाज आपस में इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि उन्हें अलग –अलग नहीं किया जा सकता है। मानव व्यक्ति के रूप में समाज का अंग होता है, और व्यक्ति, परिवार, अपने ग्राम शहर या मोहल्ले के बिना नहीं रह सकता है। ग्राम शहर के आगे भी देश–दुनियां की इकाइयां हैं। व्यक्ति उन सभी समुदाय का हिस्सा है, इनसे स्वतंत्र नहीं। एकात्म मानववाद का सुख व्यक्ति व समाज में बंटा हुआ नहीं वरन् एकात्म होता है।

तुलसीदास की भांति "कीरति भनिति भूति भलि सोई, सुरसरि सम सब कहं हित होई" अर्थात सबकी सुख में ही अपना सुख मिलता है। मानव केवल एक व्यक्ति मात्र नहीं है शरीर, मन, आत्मा और बुद्धि का समुच्चय है। वह केवल "मैं" तक सीमित नहीं "हम" से संबंध रखता है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं मानव केवल व्यक्तिगत समाज के रुप में ही एकात्म नहीं है, वह इस संसार यानी प्रकृति का भी अविभाज्य अंग है। अतः मानव यदि प्रकृति के साथ अनुचित व्यवहार करेगा तो दुखी हो जाएगा। भारतीय परंपरा प्रकृति को माता का दर्जा देती है, प्रकृति को प्रदूषित करना पाप है। इसमें सृष्टि केवल व्यक्ति और समाज से नहीं बनती बल्कि प्रकृति के भी सापेक्षिक सहयोग तथा संतुलन से बनती है। अतः मानव को प्रकृति के साथ समुचित व्यवहार करना सीखना चाहिए। व्यक्ति जीवन पर्यन्त जितने कर्म करता है उतने संस्कार उस पर होते हैं या जो विचार आते हैं उन सबका उस पर एक संकलित परिणाम होता है। इस संकलित परिणाम से उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है,परंतु आत्मा में कोई वस्तु नहीं जुड़ती है।

उसी प्रकार राष्ट्र की संस्कृति में ऐतिहासिक कारणों तथा वातावरण से उत्पन्न स्थिति के सामूहिक परिणामों से बहुत बातें जुड़ जाती हैं, और वह संस्कृति में सम्मिलित कर ली जाती है। उदाहरण के लिए महाभारत युद्ध में कौरवों की पराजय कर पांडवों की विजय हुई पर पांडवों की जीत की वजह को हमने धर्म माना। जबकि कहा जा सकता था कि सीधी–सीधी राज्य की लड़ाई थी। विभीषण ने जो किया उसे सब अच्छा कहते हैं, देशद्रोह, राजद्रोह या भातृ द्रोह नहीं युधिष्ठिर के लिए सम्मान दुर्योधन के लिए अनादर राजनीतिक कारणों से नहीं करते। कृष्ण ने कंस को पछाड़ दिया, मामा की हत्या की उस समय के राजा को हटाया परंतु कृष्ण को भगवान का अवतार मानते हैं अर्थात निर्णायक हमारी स्थिति है जो हुआ उसे हम संस्कृति से जोड़ते चले गए। वह हमारे अनुसार चलने वाली बातों को संस्कार व उसके प्रतिकूल चलने वाली बातों को हमनें विकृत कह दिया। जो हमारे अनुकूल नहीं हो सकती उन बातों को हमनें छोड़ दिया,उस इतिहास को हमने अपना नहीं माना। अतः हमारी चेतना या संस्कार ही हर वस्तु को मान्य अथवा अमान्य ठहराते हैं। यही राष्ट्र की आत्मा है।[3]

एकात्म मानववाद पंडित दीनदयाल उपाध्याय के मुंबई में 22 से 25 अप्रैल 1965 में चार भागों में दिए गए भाषण का सार है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय पूंजीवाद और समाजवाद दोनों विचारधाराओं को भारत के लिए अनुपयुक्त और अव्यावहारिक मानते थे। उनका स्पष्ट मानना था कि भारत को सुचारु रूप से चलाने के लिए नीति निर्देशक सिद्धान्त भारतीय दर्शन के आधार पर ही हो सकता है। वे पश्चिमी जगत में जन्मे सिद्धांतों के विरुद्ध मानव और समाज को विभाजित करके देखने के पक्षधर नहीं थे। उनके अनुसार मानव अस्तित्व के चार अवयव होते हैं। शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा जिनके माध्यम से जीवन के चार मौलिक उद्देश्यों काम अर्थ धर्म और मोक्ष को प्राप्त किया जाता है। इनमें से किसी की भी अवहेलना नहीं की जा सकती लेकिन मनुष्य और समाज के लिए धर्म आधारभूत होता है और मोक्ष अंतिम लक्ष्य है। उनका मानना था कि पश्चिमी पूंजीवादी और समाजवादी सिद्धान्त मात्र शरीर और मन की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं लेकिन उनका लक्ष्य मात्र सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति और धनार्जन है। जबकि मानव और समाज के सम्पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है कि भारतीय दर्शन के चार लक्ष्यों पुरुषार्थों के अनुरूप व्यक्ति और समाज की भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो।[4]

उन्होंने कहा था कि मनुष्य का शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा ये चारों अंग ठीक रहेंगे, तभी मनुष्य को चरम सुख और वैभव की प्राप्ति हो सकती है। जब किसी मनुष्य के शरीर के किसी अंग में कांटा चुभता है तो मन को कष्ट होता है। बुद्धि हाथ को निर्देशित करती है कि तब हाथ चुभे हुए स्थान पर पल भर में पहुँच जाता है और कांटें को निकालने की चेष्टा करता है यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। सामान्यतः मनुष्य शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा इन चारों की चिंता करता है। मानव की इसी स्वाभाविक प्रवृति को पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद की संज्ञा एकात्म मानववाद में व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज और समाज से राष्ट्र और फिर मानवता और चराचर सृष्टि का विचार किया गया है। एकात्म मानववाद इन सब इकाइयों में अंतर्निहित परस्पर पूरक संबंध देखता है। भारतीय चिंतन जिस तरह से सृष्टि और समष्टि को एक समग्र रूप में देखता है। वैसे ही पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने मानव समाज और प्रकृति व उसके संबंध को समग्र रूप में देखा।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की पुस्तक एकात्म मानववाद (1968) में एक उनके राजनीतिक चिंतन के मूल सिद्धांतों का पता लगा सकता है। स्वतंत्रता के लगभग दो दशक बाद पंडित दीनदयाल उपाध्याय के सामने एक बहुत ही बुनियादी समस्या थी। उन्होंने पूछा, अब जब हम स्वतंत्र हैं, तो हमारी प्रगति की दिशा क्या होगी? इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर कोई गंभीर विचार नहीं दिया गया था और शायद ही कोई कह सकता है कि एक निश्चित दिशा थी और सही फैसला किया। एकात्म मानववाद के रूप में पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भारत की तत्कालीन राजनीति और समाज को उस दिशा में मुड़ने की सलाह दी है, जो सौ फीसदी भारतीय है।[5]

एकात्म मानववाद के इस वैचारिक दर्शन का प्रतिपादन पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने मुंबई में 22 से 25 अप्रैल, 1965 में चार अध्यायों में दिए गए भाषण में किया। इस भाषण में उन्होंने एक मानव के संपूर्ण सृष्टि से संबंध पर व्यापक दृष्टिकोण रखने का काम किया था। वे मानव को विभाजित करके देखने के पक्षधर नहीं थे। वे मानव मात्र का हर उस दृष्टि से मूल्यांकन करने की बात करते हैं, जो उसके संपूर्ण जीवनकाल में छोटी अथवा बड़ी जरूरत के रूप में संबंध रखता है। दुनिया के इतिहास में सिर्फ मानव मात्र के लिए अगर किसी एक विचार दर्शन ने समग्रता में चिंतन प्रस्तुत किया है तो वो एकात्म मानववाद का दर्शन है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय समाजवाद और साम्यवाद को कागजी और अव्यावहारिक सिद्धांत के रूप में देखते थे।[6]

उनका स्पष्ट मानना था कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में ये विचार न तो भारतीयता के अनुरूप हैं और न ही व्यावहारिक ही हैं। भारत को चलाने के लिए भारतीय दर्शन ही कारगर वैचारिक उपकरण हो

सकता है चाहे राजनीति का प्रश्न हो, चाहे अर्थव्यवस्था का प्रश्न हो अथवा समाज की विविध जरूरतों का प्रश्न हो, उन्होंने मानवमात्र से जुड़े लगभग प्रत्येक प्रश्न की समाधानयुक्त विवेचना अपने वैचारिक लेखों में की है। भारतीय अर्थनीति कैसी हो, इसका स्वरूप क्या हो, इन सारे विषयों को पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय अर्थनीति विकास की दिशा में रखा है।[7]

शासन का उद्देश्य अन्त्योदय की परिकल्पना के अनुरूप होना चाहिए, इसको लेकर भी उनका रुख स्पष्ट है। समाजवादी नीतियों से प्रेरित तत्कालीन सरकारों ने व्यापार जैसे काम को भी अपने हाथ में ले लिया जो कि राज्य के लिए बेहद घातक साबित हो रहा है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय इसके खिलाफ थे। उनका स्पष्ट मानना था कि शासन को व्यापार नहीं करना चाहिए और व्यापारी के हाथ में शासन नहीं आना चाहिए। साठ के दशक में जो चिंताएं उन्होंने अपने लेखों के माध्यम से प्रस्तुत की थीं, वो चार दशक के बहुधा समाजवादी नीतियों वाले शासन प्रणाली में समस्या की शक्ल में दिखने लगी हैं। वे उस दौरान लायसेंस राज में भ्रष्टाचार की चिंता से शासन को अवगत कराते रहे। आज हमारी व्यवस्था किस कदर भ्रष्टाचार की चपेट में है, यह सभी को पता है।[8]

एकात्म मानववाद पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय का मत था कि एक राष्ट्र की संस्कृति स्वतंत्रता का आधार बनना चाहिए, अर्थात राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए आंदोलन बस एक के लिए कम हो जाएगा स्वार्थी और सत्ता चाहने वाले व्यक्तियों द्वारा हाथापाई करना, भारत में स्वतंत्रता तभी सार्थक हो सकती है।[9]

जब भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति के लिए साधन एक बन जाए। यह जरूरी हो गया था कि भारतीय संस्कृति के सिद्धांतानुसार पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने बताया कि इसकी पहली विशेषता भारतीय संस्कृति थी कि यह पूरे जीवन को एकीकृत के रूप में देखता था। उनके शब्दों में–"हम मानते हैं कि विविधता है और जीवन में बहुलता भी है, लेकिन हमारे पास हमेशा से ही उनके पीछे एकता को खोजने का प्रयास किया। यह प्रयास पूरी तरह से वैज्ञानिक है। वैज्ञानिक हमेशा आदेश की खोज करने की कोशिश करते हैं ब्रह्मांड में स्पष्ट विचार के लिए, सिद्धांतों का पता लगाना ब्रह्मांड और फ्रेम पर व्यावहारिक नियम इन सिद्धांतों के आधार पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने माना कि जीवन में विविधता महज थी आंतरिक एकता की अभिव्यक्ति पूरक थी। उनका मानना था कि विविधता में एकता और विभिन्न रूपों में एकता की अभिव्यक्ति भारतीय संस्कृति का केंद्रीय विचार बनी हुई थी।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने सामाजिक जीवन में संघर्ष को दृढ़ता से खारिज कर दिया। उन्होनें बताया कि "संघर्ष संस्कृति या प्रकृ ति का संकेत नहीं है। वह आपसी सहयोग को महत्वपूर्ण मानते थे भारतीय संस्कृति और सभ्यता की विशेषता जो आकर्षित हुई पोषण और विश्वास तथा आपसी सहयोग से प्रेरणा इस पृथ्वी पर निरंतर जीवन ही नहीं बल्कि यह विकृति का एक लक्षण है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, उनके बीच आपसी निर्वाह के इस तत्व की मान्यता जीवन के विभिन्न रूप और मानव जीवन बनाने का प्रयास पारस्परिक रूप से सभ्यता निरंतरता की प्रमुख विशेषता प्रतीत हुई थी। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शब्दों में–"समाज में हम दोनों के उदाहरण पाते हैं स्नेह और साथ ही दुश्मन भाई लेकिन, हम मानते हैं– स्नेह अच्छा है और भाईचारे को बढ़ाने के उद्देश्य से संबंधों के विपरीत प्रवृत्ति है इसलिए यह अस्वीकृत हो गया। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने सोचा कि मानव प्रकृति का प्रदर्शन करता है दोनों की प्रवृत्ति, क्रोध और लालच एक तरफ और प्यार और दूसरे पर बलिदान है। उनका मत था कि सत्यता मानव प्रजातियों का एक अंतर्निहित गुण था। यह "एक बच्चा स्वभाव से असत्य नहीं बोलता है। अक्सर, माता–पिता अपने बच्चे को बोलना सिखाते हैं असत्य ऐसा लगता है कि, उनके अस्वीकरण के बावजूद, पंडित दीनदयाल उपाध्याय प्रकृतिवादी थे। पश्चिम दार्शनिकों से कुछ हद तक प्रभावितहैं विशेष रूप से उपरोक्त कथन में हम पाते हैं एक महान दार्शनिक के रूप में रूसो की अवधारणा का प्रभाव है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का मानना था कि ये सभी उपरोक्त सिद्धांत भारत में धर्म की मूल विशेषताएं थीं। ये जीवन के नियम थे। उन्होंने कहा मैं उन सभी सिद्धांतों का समर्थन किया जो जीवन में सद्भाव, शांति और प्रगति लाए इसमें मानव जाति को शामिल किया गया था। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शब्दों में एक एकीकृत जीवन ही नहीं है नींव और अंतर्निहित सिद्धांत हमारी संस्कृति, बल्कि इसके उद्देश्य और आदर्श भी हैं। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने जीवन को केवल एकीकृत नहीं माना था सामूहिक या सामाजिक जीवन के मामले में भी व्यक्तिगत रूप से जीवन के बारे में उन्होंने कहा। हालांकि शारीरिक आराम शारीरिक प्रसन्नता और विलासिता को खुशी माना जाता है, मानसिक चिंताएं व्यक्ति को नष्ट कर सकती हैं।

मानव समाज की स्थापना

मानव समाज की स्थापना के बाद से एक समृद्ध जीवन जीने और दूसरों (समाज) को समृद्ध समृद्धि बनाने की शैली पर चर्चा शुरू हुई। इस संबंध में कई दार्शनिकों, बुद्धिजीवियों, नेताओं और धार्मिक गुरुओं ने अपने विचारों को समय दिया और अवधारणा में मूल्य जोड़ा। पंडित दीनदयाल उपाध्याय, जो प्रमुख भारतीय दार्शनिक, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, इतिहासकार, पत्रकार और राजनीतिक वैज्ञानिक थे, एकात्म मानववाद की अवधारणा दी, जिसने एकात्म मानववाद का सिद्धांत विकसित किया। उनके अनुसार "मानव जाति के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के चार पदानुक्रमित गुण थे जो चार सार्वभौमिक लक्ष्यों, काम या इच्छा के अनुरूप थे। संतुष्टि, अर्थ (धन), धर्म (नैतिक कर्तव्य) और मोक्ष (कुल मुक्ति या मोक्ष) जबकि किसी को भी नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है, धर्म बुनियादी है, और मानव जाति और समाज का अंतिम उद्देश्य है। उन्होंने दावा किया कि पूंजीवादी और समाजवादी विचारधारा दोनों के साथ मुख्य समस्या यह है कि वे केवल शरीर और मन की जरूरतों पर विचार करते हैं, और इसलिए इच्छा और धन के भौतिकवादी उद्देश्यों पर आधारित थे। इस सिद्धांत के पीछे मुख्य उद्देश्य व्यक्तिवाद के सिद्धांत को खारिज करना और अविभाजित समाज के निर्माण के लिए परिवार और समाज के महत्व को बढ़ावा देना है। उन्होंने आगे चलकर सामाजिक व्यवस्थाओं को खारिज कर दिया जिसमें व्यक्तिवाद ने सर्वोच्च शासन किया।

उन्होंने साम्यवाद को भी खारिज कर दिया जिसमें व्यक्तिवाद को बड़ी हृदयहीन मशीन के हिस्से के रूप में कुचला गया था। उन्होंने समझाया कि व्यक्तियों के बीच एक सामाजिक अनुबंध से दिए गए समाज, पूरी तरह से अपनी स्थापना के समय एक निश्चित राष्ट्रीय आत्मा या लोकाचार के साथ एक प्राकृतिक जीवित जीव के रूप में पैदा हुए थे और सामाजिक जीवों से इसकी आवश्यकताएं व्यक्ति की समानताएं एकता के खिलाफ उनके दावे को कई भारतीय और विदेशी बुद्धिजीवियों ने समर्थन दिया। डेविड का तर्क है कि 1960 और 1992 के बीच, तथा कथित तीसरी दुनिया में, जन्म के समय जीवन प्रत्याशा 46 से बढ़कर 63 हो गई, शिशु मृत्यु दर आधे से अधिक घट गई, और वास्तविक प्रति व्यक्ति आय लगभग बढ़ गई है। ये लाभ नहीं थे समान रूप से साझा किया गया है,

लेकिन तथ्य यह है कि वे पूरी तरह से 1960 के दशक में अर्थशास्त्रियों की निराशावादी भविष्यवाणियों के साथ विचरण पर थे।

उपरोक्त कथन से पता चलता है कि विकास को साझा या व्यक्तिगत रूप से हासिल नहीं किया जा सकता है, लेकिन हमें ऐसी उपलब्धियों को प्राप्त करने या खुश करने के लिए एक समूह या समाज की आवश्यकता है। डेविड ने पंडित दीनदयाल उपाध्याय के पक्ष में तर्क दिया कि एक अविभाजित समाज के निर्माण की प्रक्रिया में हमें एक व्यापक डोमेन पर विचार करने की आवश्यकता है जहां हमें पूरी प्रगति के बारे में सोचना होगा व्यक्ति की प्रगति के बारे में सोचने के बजाय। उन्होंने चर्चा की कि महासागरों, नदियों और हवा को स्वच्छ रखने के बारे में हम उन लोगों से कैसे बात कर सकते हैं जब स्रोत पर अपना जीवन दूषित होता है?[10]

गरीबी की स्थितियों में पर्यावरण में सुधार नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सतत विकास के लिए पर्यावरण और विकास के प्रति मूल्यों और दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता है, समाज की ओर और घर पर, खेतों पर और कारखानों में विद्वानों के अलावा, गांधी जैसे महान व्यक्तित्व के साहित्य से उनके विचार देखे जा सकते हैं। एकात्म मानववाद गांधी के भावी भारत के दृ ष्टिकोण का लगभग सटीक उदाहरण है। दोनों भारत के लिए एक विशिष्ट मार्ग की तलाश करते हैं, दोनों समाजवाद और पूंजीवाद के भौतिकवाद को समान रूप से अस्वीकार करते हैं, दोनों एक समग्र, वर्ण–धर्म आधारित समुदाय के पक्ष में आधुनिक समाज के व्यक्तिवाद को खारिज करते हैं, दोनों राजनीति में धार्मिक और नैतिक मूल्यों के उल्लंघन पर जोर देते हैं, और दोनों ही हिंदू मूल्यों को संरक्षित करने वाले सांस्कृतिक रूप से आधुनिकीकरण की प्रामाणिक विधि चाहते हैं। एकात्म मानववाद में दो विषयों के आसपास दर्शन आयोजित होते हैं–

राजनीति और स्वदेषी

राजनीति और स्वदेशी में नैतिकता और अर्थव्यवस्थाओं में छोटे पैमाने पर औद्योगीकरण, उनके सामान्य विषयगत विशिष्ट हिंदू राष्ट्रवादी यें सभी गांधीवादी धारणाएं सद्भाव के मूल विषयों, सांस्कृतिक राष्ट्रीय मूल्यों की प्रधानता और अनुशासन के इर्द–गिर्द घूमती हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने गांधीवादी स्वदेशी क्रांति को एक नई सोच दी थी, जिसमें कहा गया था कि स्वदेशी एक प्रतिबद्धता और समर्पण के साथ जीवन का एक तरीका है जो सामान्य रूप से और ग्रामीण जनता के लिए भारत के लोगों के लाभ के लिए प्रस्तावित और अभ्यास किया जाता है। विशेष रूप से जो छह लाख गांवों में रहते हैं। स्वदेशी हमें अपने तत्काल परिवेश का उपयोग करने और सेवा करने की मांग करता है। इसलिए, पड़ोसियों को प्रोत्साहित करना हर किसी की जिम्मेदारी है जो हमारी जरूरतों को पूरा कर सकता है। उनके अनुसार स्वदेशी की अवधारणा, राष्ट्रीय अस्तित्व के लिए एक आवश्यकता है और आज भी बहुत हद तक सही है। गांधी द्वारा हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को जीवंत और जीवंत बनाने के लिए दिया गया यह दृष्टिकोण उनकी आंखों के सामने भी ठिकाने लगा दिया गया था।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार चार तत्व व्यक्ति, शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा थे। उन्होंने कहा कि भ्रम की स्थिति है पश्चिम में इस तथ्य के कारण उत्पन्न हुआ था कि पश्चिमी लोग मानव के प्रत्येक अवयवों का अलग–अलग व्यवहार किया था और बाकी से कोई संबंध नहीं है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने निपटने के पश्चिमी प्रयास की निंदा की मानव की हर समस्या के साथ अलग–अलग पश्चिमी लोग पहले सुनिश्चित करके राजनीतिक अधिकारों के साथ व्यक्ति को प्रदान किया। वोट देने का उनका अधिकार तत्पश्चात समाजवाद के विभिन्न ब्रांड उनके आगमन और कार्लमार्क्स ने अपना खुद का ब्रांड विकसित किया। समाजवाद को वैज्ञानिक समाजवाद के रूप में जाना जाता है। उन्होंने एक सैद्धांतिक बनाया के बीच में अंतर है और नहीं है जीवन की बुनियादी जरूरतें। "लेकिन जो लोग दिखाए गए मार्ग का पालन करते हैं कार्लमार्क्स के विचारों के बारे में पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने कहा, उन्हें एहसास हुआ कि वे न तो रोती थी और न ही मतदान सही था। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने माना कि वे पश्चिम के विचारक थे उन्हें एहसास है कि वहाँ कहीं मौलिक झूठ बोला उनके जीवन की प्रणाली में अंतराल कम था जिसके कारण वे वंचित थे खुशी की बात है, भले ही वे इतना कुछ हासिल कर चुके थे उन्होंने हालांकि, विचारकों की पहचान नहीं की। पंडित दीनदयाल उपाध्याय अपने दृढ़ विश्वास में दृढ़ थे कि एक एकीकृत मानव के बारे में सोचो उनका मानना था कि मनुष्य की प्रगति का अर्थ है मन, बुद्धि और व्यक्ति की आत्मा शरीर की एक साथ प्रगति होना। उनकी राय में भारतीय संस्कृति इस विषय पर लगातार काम करती रही।[11]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद के इस वैचारिक दर्शन का प्रतिपादन, मुंबई में 22 से 25 अप्रैल 1965 में चार अध्यायों में दिए गए इस भाषण में, उन्होंने पूरा वर्णन किया। निर्माण के साथ संबंधों पर व्यापक दृष्टिकोण रखने के लिए काम किया। वे मनुष्यों को विभाजित करने के पक्ष में नहीं थे। वे हर दृष्टिकोण से मानव मन का मूल्यांकन करने की बात करते हैं जीवनकाल में छोटी या बड़ी जरूरतों के लिए। सिर्फ मनुष्य– यदि केवल एक विचार दर्शन ने समग्रता में चिंतन प्रस्तुत किया है, तो वह एकता है मानवतावाद का दर्शन है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय समाजवाद और साम्यवाद कागज और अव्यवहारिक एक सिद्धांत के रूप में उनका स्पष्ट मानना था कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह विचार न तो भारतीयता से मेल खाती थी न तो व्यावहारिक हैं और न ही व्यावहारिक भारतीय दर्शन भारत को चलाने के लिए एक प्रभावी विचारधारा है उपकरण हो सकते हैं।[13] चाहे वह राजनीति का सवाल हो, चाहे वह अर्थव्यवस्था का सवाल हो या समाज का विभिन्न आवश्यकताओं का प्रश्न होना चाहिए, उन्होंने मानव जाति से संबंधित लगभग हर प्रश्न का हल निकाला अपने वैचारिक लेखों में भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति क्या होनी चाहिए, इसका स्वरूप क्या होना चाहिए, ये सभी विषय हैं पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय अर्थव्यवस्था को विकास की दिशा में आगे बढ़ाया है। शासन का उद्देश्य अंत्योदय परिकल्पना के बारे में उनका दृष्टिकोण भी स्पष्ट है।

समाजवादी नीतियों से प्रेरित सरकारों ने भी व्यापार का काम संभाला जो कि राज्य बेहद घातक साबित हो रहे थे। पंडित दीनदयाल उपाध्याय इसके खिलाफ थे। उनका स्पष्ट रूप से मानना था कि शासन को व्यवसाय नहीं करना चाहिए और शासन को व्यवसायियों के हाथों में नहीं आना चाहिए। साठ के दशक में उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से जो चिंताएँ प्रस्तुत कीं, वे अक्सर चार दशकों की थीं। समाजवादी नीतियों के साथ शासन प्रणाली में समस्याएं दिखाई देने लगी हैं। वे उस दौरान लाइसेंस लेते हैं उन्होंने सरकार को राज्य में भ्रष्टाचार की चिंताओं के बारे में जानकारी दी। आज हमारी व्यवस्था में कितना भ्रष्टाचार है हर कोई इसकी चपेट में है। वह एक विकेंद्रीकृत व्यवस्था के पक्ष में थे। सभी सामाजिक क्षेत्रों के राष्ट्रीयकरण के खिलाफ थे, तत्कालीन कांग्रेसी सरकारों द्वारा अंधाधुंध राष्ट्रीयकरण किया जा रहा था। वे जानते थे कि यह देश मेहनतकश लोगों का है, जो राज्य की बुनियादी जरूरतों के लिए हैं कभी आश्रित नहीं रहे हैं। लेकिन समाजवादी नीतियों से प्रभावित कांग्रेस सरकारों ने सत्ता संभाली सत्ता का दायरा बढ़ाने की होड़ में समाज की ताकत को राष्ट्रीयकरण की

चपेट में ले लिया गया। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने शिक्षा के मामले का विरोध किया है, जिसका सरकारीकरण भी पूरी तरह से है आधिकारिक कर दिया गया है। आज सरकारी स्कूलों की समस्या क्या है, यह किसी से छिपा नहीं है। शिक्षा सरकार के हाथों में देना बंदर के हाथ में उस्तरा साबित हुआ है। यह काम समाज का है इसे छोड़ा जा सकता था, लेकिन समाजवादी नीतियों का अंधा उत्साह उनकी बात नहीं मानता था। पंडित दीनदयाल उपाध्याय सरकार से उन क्षेत्रों में प्रवेश करने का आह्वान कर रहे हैं जहां समाज या निजी क्षेत्र जोखिम नहीं लेते हैं। लेकिन तत्कालीन सरकारों ने इसके खिलाफ कार्रवाही की।

निष्कर्ष

आज पचास साल बाद, हमारी व्यवस्था समाजवादी नीतियों के चक्र में इतनी उलझ गई है कि उसमें से बाहर निकालने या हटाने के बारे में सोचना भी बहुत मुश्किल है। सरकार द्वारा आश्रित विषय तैयार करने की समाजवादी नीति ने हमें इन सत्तर सालों में अपंग बना दिया है। जब प्रधानमंत्री मोदी स्वच्छता की बात करते हैं, तो इस देश की सात दशकों में तैयार समाजवादी नीतियों की प्रणाली पर एक सवाल उठता है। अब हम करेंगे ही क्या स्वच्छता के लिए भी सरकार पर निर्भर करेगा? ऐसी स्थिति में समाजवाद और साम्यवाद जैसी नीतियां यह अव्यावहारिक है, पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने इसे पचास साल पहले बताया था, जो आज सच साबित कर रहे हैं कि हम दिन–ब–दिन राज्य और सरकार पर निर्भर होते जा रहे हैं हम सरकार से यह भी अपेक्षा करेंगे कि वह मुंह की खाए। सामाजिक विकलांगता का यह खतरा बचाने के लिए हमें दीनदयाल उपाध्याय की सोच पर लौटना चाहिए। उसी तरह मानव कल्याण के लिए छोड़ दिया है।14

संदर्भ सूची

1. शर्मा, डॉ. महेश चन्द्र, दीनदयाल उपाध्याय, कृतित्व एवं विचार, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृष्ठ–133.
2. वही, पृष्ठ–135.
3. वही, पृष्ठ–138.
4. बघेल, अंजू, पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के विचारों का दर्शन, स्वरांजलि पब्लिकेशन, दिल्ली, 2018, पृष्ठ–96.
5. वही, पृष्ठ–98.
6. वही, पृष्ठ–107.
7. गोविन्दाचार्य, के.एन., आर्थिक स्वतंत्रता से जरूरी, पाञ्चजन्य, भारत प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष 67, अंक–46, 10 अप्रैल 2016, पृष्ठ–13.
8. वही, पृष्ठ–14.
9. वही, पृष्ठ–16.
10. उपाध्याय, दीनदयाल, एकात्म मानववाद तत्व मीमांसा सिद्धांत विवेचन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृष्ठ–63.
11. उपाध्याय, दीनदयाल, एकात्म मानववाद, जागृति प्रकाशन, नोयडा, 1994,पृष्ठ–24.
12. मिश्र, कमल किशोर, प्राचीन भारत की अर्थव्यवस्था, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2004 पृष्ठ–3.
13. सांबला, मनोज, युगपुरूष पंडित दीनदयाल उपाध्याय, राज पब्लिकेशन, दिल्ली, 2017, पृष्ठ, 188.
14. नेने, विनायक वासुदेव, पं0 दीनदयाल विचार दर्शन, खण्ड–2 एकात्म मानव दर्शन सुरूचि प्रकाशन दिल्ली, 1990, पृष्ठ–35